रामनगर में महत्त्वपूर्ण पुरातत्त्व स्थल की खोज

डा. नीरज कुमार पाण्डेय

वाराणसी विश्व के उन अति प्राचीन नगरों में एक है, जिसकी सातत्यता, अखण्डता, प्राचीनता एवं धार्मिक समादरता त्रिसहस्राधिक वर्षों से अक्षुण्ण है।[1] वर्तमान का वाराणसी जनपद गङ्गा नदी के दोनों किनारों पर अवस्थित है, जिसकी भौगोलिक स्थिति 82° 56' - 83° 03' पूर्वी देशान्तर एवं 25° 14' - 25° 23.5' उत्तरी अक्षांश है।[2] रामनगर वाराणसी जनपद के अन्तर्गत आता है। गङ्गा नदी रामनगर से अर्द्धचन्द्राकार स्वरूप लेते हुए राजघाट तक उत्तरवाहिनी होकर बहती है। जहाँ से गङ्गा मोड़ लेते हुए उत्तरवाहिनी होती हैं, वहाँ एक विशाल टीला अवस्थित है। यह टीला पूर्व में राष्ट्रीय राजमार्ग सं. 7, पश्चिम में गङ्गा नदी, उत्तर में रामनगर का किला तथा दक्षिण में विश्वसुन्दरी पुल तक फैला हुआ है। चूँकि ज्ञान-प्रवाह रामनगर किला से पश्चिम की ओर गङ्गा के इस पार है अतः यहाँ से यह टीला स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

लेखक द्वारा इस क्षेत्र का स्थलीय सर्वेक्षण प्रो. आर. सी. शर्मा (निदेशक, ज्ञान-प्रवाह) के निर्देश पर फरवरी 2005 के उत्तरार्द्ध में किया गया। तत्पश्चात् स्थल का सर्वेक्षण प्रो. आर.सी. शर्मा, प्रो. विदुला जायसवाल, प्रो. कमल गिरि, श्रीमती विमला पोद्दार, डा. सविता शर्मा, श्री चन्द्रनील शर्मा और प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुछ शोधार्थियों ने किया।

स्थल से प्राप्त उत्तरी कृष्णमार्जित पात्र (Northen Black Polished Ware), अभिलिखित मुद्रा (Inscribed Sealing), धूसर पात्र (Grey Ware) शुंग-कुषाण और मध्यकाल तक के परवर्ती पात्र, शुंग-कुषाण काल की मृण्मूर्तियाँ, मिट्टी और पत्थर के मनके आदि इस स्थल के बहुआयामी पुरातात्त्विक महत्त्व का परिचय देते हैं। सर्वेक्षण की उपलब्धियाँ निम्नवत् हैं-

मृत्पात्र (Pottery) - जिस प्रकार अभिलेख, सिक्के, मृण्मूर्तियाँ आदि इतिहास जानने के स्रोत के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं उसी प्रकार मृत्पात्रों का भी अपना महत्त्व है। कालक्रम के अध्ययन में मृत्पात्र महत्त्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। रामनगर से प्राप्त मृत्पात्र और उनके टुकड़ों का विवरण निम्नलिखित है-

स्थलीय सर्वेक्षण से उत्तरी कृष्णमार्जित पात्र (Northen Black Polished Ware), के अनेक टुकड़े मिलते हैं जिनमें थाली, सकोरा, चषक आदि शामिल हैं। कुछ काले व लाल रंग के पालिशयुक्त टुकड़े भी मिलते हैं। इनका समय चौथी-तीसरी शताब्दी ई. पू. रखा गया है।[3] इसी समय के कुछ अन्दर की ओर मुड़ी अवठ वाले सकोरे (Bowls with inturned rim) भी प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार शुंगकाल से लेकर मध्यकाल तक के मृत्पात्रों के टुकड़े भी प्राप्त होते हैं। (Fig. No. 4) मध्यकाल के टोंटी वाले पात्रों की टोटियाँ प्राप्त होती है जो जलपात्र अथवा सुगन्धित तरल पदार्थों को रखने के काम में आती होंगी। (Fig. No. 1)

इनके अतिरिक्त मिट्टी का ठप्पा (Dabber), मिट्टी के मनके का टुकड़ा, अच्छी प्रकार पकाई गई मिट्टी के विभिन्न आकार की गेंद (Balls) और प्रसाधन में काम आने वाला शरीर साफ करने का झांवा भी रामनगर से प्राप्त हुए हैं। (Fig. No. 2)

मृण्मूर्तियाँ (Terracottas) भारतीय कला में मृण्मूर्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी सामग्री प्रचुर मात्रा में है एवं प्राचीन भी। प्रायः यह सर्वत्र प्राप्य हैं और आरम्भ से इनका सातत्य बना है। मृण्मूर्तिकला की परम्परा प्रस्तरमूर्तिकला से पूर्ववर्ती है और इनका प्रयोग और रचना विभिन्न प्रकार से होती थी। यद्यपि मृण्मूर्तिकला को साधारणतया लोक कला कह कर पुकारते हैं किन्तु अभिजात वर्ग अथवा राजा इसका निर्माण कराये तो वही उत्कृष्ट कोटि की कला हो जाती है।

मौर्य एवं शुंगकालीन मृण्मूर्तियाँ– मौर्यकाल की मृण्मूर्तियाँ वैसे तो कई स्थानों से मिली हैं पर प्रमुख रूप से मथुरा से प्राप्त भूरे एवं काले रंग की स्त्रीमूर्तियाँ जिनमें से अधिकतर को मातृदेवी के रूप में पहचाना गया है, कुछ खंडित पुरुषमूर्तियों के मस्तक, मानवाकार के कुछ पात्र तथा खिलौनों का समावेश है। रामनगर से भी मौर्यकालीन पालिशयुक्त एक खिलौने का टुकड़ा प्राप्त हुआ है। संभवतः यह खिलौना हाथी का पैर रहा हो।

शुंग काल की मृण्मूर्तियाँ अधिकतर लाल रंग की हैं तथा समूची मूर्ति ही सांचे के द्वारा बनायी जाती थी। रामनगर से शुंगकालीन एक स्त्री का धड़ (Bust) प्राप्त हुआ है जो हाथ में कोई वस्तु पकड़े हुए है।

कुषाणकालीन मृण्मूर्तियाँ–कुषाण काल की मृण्मूर्तियों में शुंगकाल की तुलना में सांचे का प्रयोग कम हुआ है फलतः इस काल की कई स्त्री और पुरुष मूर्तियां जिनके अधिकतर मस्तक ही प्राप्त होते हैं, ठोस हैं। इसके नमूने हमें मथुरा, घोसी जिला आजमगढ़, कौशाम्बी, पटना आदि अनेक स्थानों से मिले हैं। रामनगर से इसी काल के दो स्त्री मस्तक प्राप्त हुए हैं। स्त्री का मुंह सांचे में ढाल कर बनाया गया है और कान को अलग से जोड़कर। कान में बड़े आकार के गोल कर्णाभूषण हैं। बालों को पीछे की ओर खींच कर बाँधा गया है। नाक लम्बा, नेत्र खुले और भौवें आकर्षक हैं। स्त्री के ओठों पर एक रहस्यमयी मुस्कान की आभा है। (Fig. No. 3)

अभिलिखित मुद्रा (Inscribed Sealing) इतिहास के अन्य स्रोतों में मृण्मुद्राओं का विशेष स्थान है क्योंकि इनका राजाज्ञा, व्यापार और पहचान के लिए प्रयोग होता था। अनेक प्राचीन संदर्भों और विशेष रूप से कौटिल्य *अर्थशास्त्र* (2.34) में मुद्राओं का उपयोग और दुरुपयोग दोनों ही दरबारी षड्यन्त्रों, व्यापार एवं प्रेम-प्रपञ्चों में होने का उल्लेख मिलता है। नगर प्रवेश, परिचयपत्र और पासपोर्ट के लिए भी मुद्रा का प्रयोग होता था और उसके लिए शुल्क निर्धारण का भी प्रावधान था। यद्यपि धातु, हाथीदांत, पत्थर आदि की मुद्रायें चलती थी किन्तु अधिकांशतया मिट्टी की मुद्राओं का वर्चस्व था। धार्मिक स्थानों और स्तूपों पर शुभवाक्यों से मृण्मुद्राएँ अंकित की जाती थी। गिलगित-ग्रंथों में इसके पुण्य का विशेष उल्लेख है। कभी-कभी गलत या विचित्र अक्षर लिखकर कूटमुद्रा बनाई जाती थी ताकि उसका उपयोग व्यक्ति विशेष अथवा उसके विश्वासपात्रों तक सीमित रहे। रामनगर में मौर्य-शुंगकाल की एक खण्डित मृण्मद्रा मिली है जिसें ब्राह्मी लिपि के कुछ अक्षर बने हैं। मुद्रा आकार में गोलाई लिए हुए है और अक्षर स्पष्ट हैं।

उपरत्न (Semi Precious Stone) आभूषणों के निर्माण में मनकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सम्भवतः रामनगर मनके बनाने का केन्द्र रहा होगा और यहाँ से जलमार्ग द्वारा मनकों का या उनसे बने आभूषणों का निर्यात होता होगा। यहाँ से विभिन्न प्रकार के उपरत्नों के टुकड़े, मनके और अधबने मनके भारी मात्रा में मिलते हैं, जिनमें अगेट, कार्नेलियन, क्वार्ट्ज, सीसा, क्रिस्टल (स्फटिक), जैस्पर आदि प्रमुख हैं।

निष्कर्ष–अतीत के गर्भ में झाँकने के लिए इतिहास और भूगोल रूपी उपकरणों की तुलना आँखों से की गई है। किसी भी देश का इतिहास उसके भूगोल पर निर्धारित होता है। जितनी महान् सभ्यताएँ प्राचीन विश्व में उत्पन्न हुई, वे नदी की उर्वरा घाटियों में ही पनपीं। यह इतिहास के लिए भूगोल की महत्ता का परिचायक है।[4] काशी के भूगोल के परिप्रेक्ष में विभिन्न पुराणो में अनेक विवरण मिलते हैं। *पद्मपुराण* के पातालखण्ड[5] में काशी का विस्तार बतलाया गया है। इसके अनुसार मध्यमेश्वर मन्दिर (मैदागिन के उत्तर मकान नं. के. 53/63 के सामने मध्यमेश्वर मुहल्ले में) को केन्द्र मानकर देहली *विनायक (पंचक्रोशी मार्ग* पर) तक बनाई गई तृज्या से खींचे गये वृत्ताकार क्षेत्र को ही काशी का परिमाण बताया गया है। इस वृत्ताकार क्षेत्र के अन्तर्गत रामनगर भी आता है।

व्यापारिक दृष्टि से अध्यन करने पर यह पता चलता है कि काशी का सर्वाधिक महत्त्व व्यापारिक कारणों से था जिसका कारण सम्भवतः यहाँ की भौगोलिक स्थिति व परिहवन आदि जैसे नदी व स्थल दोनों ही प्रकार की सुविधाएँ थी। बौद्ध एवं जैन आदि ग्रन्थों से विदित होता है कि वाराणसी में श्रेष्ठि एवं सार्थवाहों के कुल थे जो व्यापार के लिए प्रसिद्ध थे। स्थल मार्गों के अतिरिक्त वाराणसी का सम्बन्ध उन बड़े-बड़े व्यापारिक नगरों से था जो नदियों या समुद्र के किनारे बसे थे। जातकों में बहुत सारे ऐसे विवरण प्राप्त होते हैं जिनसे पता चलता

है कि गङ्गा नदी में नावें चलती थी जिनसे न केवल तटीय नगरों में ही व्यापार होता था अपितु वाराणसी के व्यापारी समुद्री यात्रा करते हुए विदेशों तक जाते थे। *सीलानिसंस जातक*[6] से पता चलता है कि एक उपासक समुद्र से नदी द्वारा वाराणसी पहुँचा। *वावेरु जातक*[7] में बनियों द्वारा नौका पर दिशा काक (दिशा की जानकारी के लिए कौवों को जहाज पर रखते थे) लेकर वावेरु राष्ट्र जाने का विवरण मिलता है। इससे यह पता चलता है कि प्राचीन काल में काशी का व्यापार गङ्गा नदी से होते हुए सामुद्रिक बन्दरगाहों तक होता था।

कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* से ज्ञात होता है कि पथकर वसूलने के लिए अधिकारी नियुक्त होते थे जो स्थलमार्ग और जलमार्ग दोनों पर तैनात रहते थे। जो नगर नदी के किनारे अवस्थित होते थे वहाँ जलमार्ग पर नगर के दोनों ओर कर-व्यय-गृह होते थे जहाँ व्यापारी टैक्स जमा करते थे। राजघाट और रामनगर वाराणसी के दो छोर पर स्थित हैं। राजघाट की पुरातात्त्विक महत्ता तो सर्वविदित है ही, रामनगर से भी पुरातात्त्विक वस्तुएँ प्राप्त होने लगी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में राजघाट व रामनगर जलमार्ग द्वारा वाराणसी के प्रवेश और निकासद्वार होने के कारण प्रमुख पत्तन के रूप में विख्यात होंगे और यहाँ का बना सामान विदेशों तक भेजा जाता होगा।

रामनगर के पुरातात्त्विक सर्वेक्षण से यह सम्भावना बनी है कि गङ्गा के किनारे के इस विशाल टीले से महत्त्वपूर्ण सामग्री मिलेगी और काशी के इतिहास पर नया प्रकाश पड़ेगा। श्री लक्ष्मी दत्त व्यास व श्री कल्याणी प्रसाद के पत्रों से सूचना मिली है कि 1971-72 में उन्होंने भी सर्वेक्षण कर कुछ मृत्पात्र आदि प्राप्त किये थे किन्तु आगे कोई प्रगति नहीं हो सकी। स्थल पर कुछ भवन, मन्दिर आदि के बनाने के कारण यह पुरास्थल क्षतिग्रस्त होता जा रहा है। अतः यह आवश्यक है कि इसके पूर्णतया नष्ट होने से पूर्व पुरातात्त्विक शोध का कार्य सम्पन्न कर लिया जाय। इस दिशा में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग द्वारा वृहत्सर्वेक्षण और उत्खनन का प्रस्ताव भेजा जा रहा है जिसमें ज्ञान-प्रवाह का सहयोग तो होगा ही वैज्ञानिक एवं तकनीक सहायता के लिए आई.आई.टी. कानपुर का भी सहयोग मिलने की सम्भावना है।

संदर्भ

1. Kane P.V., *History of Dharmasastra,* Vol. IV, Ch. XIII, p. 618.
2. Singh Rana P.B. & Rana Pravin S., *Banaras Region.* p. 25.
3. Narain A.K. & Roy T.K., *Excavation at Rājghāt - Part II,* p. 8.
4. डा. ईश्वर शरण विश्वकर्मा की पुस्तक *काशी का ऐतिहासिक भूगोल* में प्रो. ठाकुर प्रसाद वर्मा के प्राक्थन से।
5. मध्यमेश्वरमारभ्य याववदेहलिविघ्नपम्।
   सूत्रं संस्थाप्य तद्दिक्षु भ्रामयेमण्डलाकृतिम्।।
   तत्र या जायते रेखा तन्मध्ये क्षेत्रमुत्तमम्।
   काशीति तद्विदुर्देवास्तत्र मुक्तिः प्रतिष्ठिता।।
6. कौसल्यायन भदन्त आनन्द, *जातक, द्वितीय खण्ड,* हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ. 303
7. कौसल्यायन भदन्त आनन्द, *जातक, तृतीय खण्ड,* हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ. 290

संदर्भ ग्रन्थ

1. काशी का ऐतिहासिक भूगोल, डा. ईश्वर शरण विश्वकर्मा, रामानन्द विद्याभवन, दिल्ली
2. वाराणसी के स्थाननामों का सांस्कृतिक अध्ययन, डा. सरित किशोरी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
3. जातक, खण्ड प्रथम से षष्ठ, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
4. Excavations at Rājghāt, Part I to IV, Prof. A.K. Narain, Banaras Hindu University, Varanasi.
5. Arthaśāstra of Kautilya, Mahamahopadhyaya T. Ganapati Sastri, Government Press, Trivandrum.
6. प्राग्धारा, अंक 4, राकेश तिवारी, उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्त्व संगठन, लखनऊ।

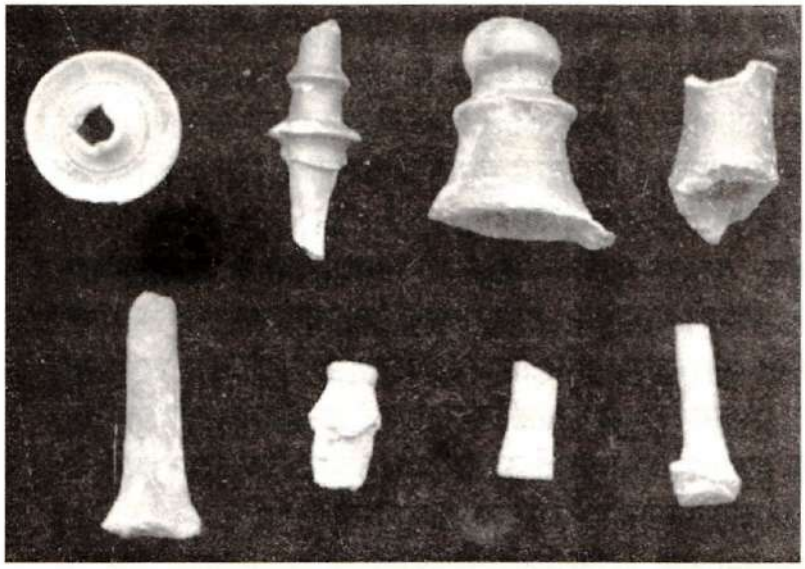

Figure - 1

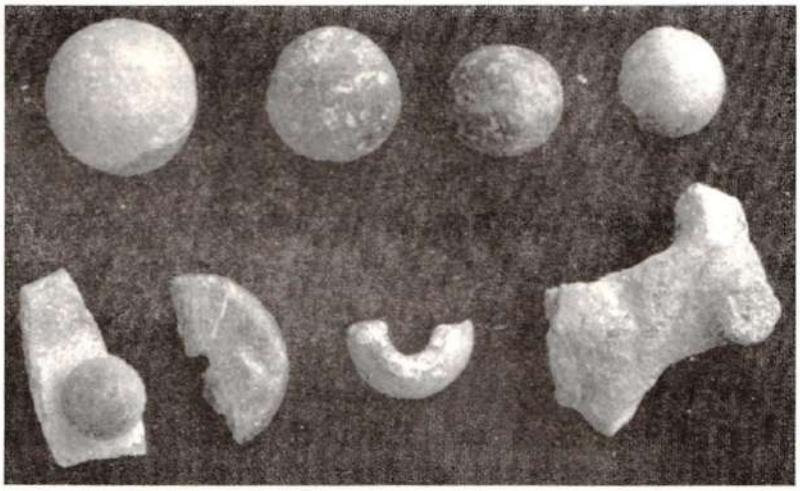

Figure - 2

Figure - 3

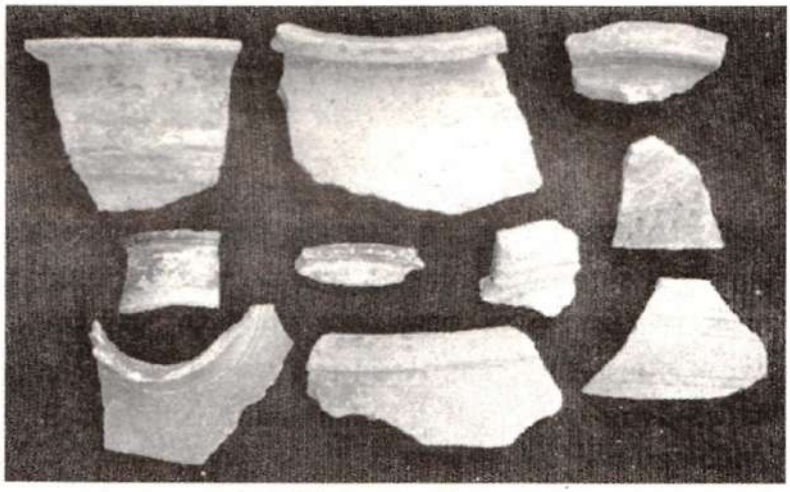

Figure - 4